वर्तमान समय में जैन सिद्धान्तों की उपादेयता

☐ मुनिश्री विनयकुमार 'भीम'

कहने को कहा जाता है, वर्तमान युग ने बहुत उन्नति की है, एक अपेक्षा से यह सच भी है, भौतिकविज्ञान उच्चता तक पहुँचा है और पहुँचता जा रहा है। उस द्वारा ऐसे ऐसे चामत्कारिक निर्माण हुए हैं, जिनकी संभवतः मानव को कोई कल्पना ही नहीं थी। यह सब तो हुआ, पर यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि उसने आज बहुत खोया भी है। इतना खोया है कि कभी-कभी तो उसे ऐसा मानने में संकोच होने लगता है कि वह मानव भी है क्या। वैज्ञानिक विकास तो हुआ पर कौन नहीं जानता कि उससे सारा जगत् आज आतंकित और भयाक्रांत है। महान् वैज्ञानिक की प्रतिभा का अधिकतम भाग ऐसे विध्वंसक शस्त्रास्त्रों के निर्माण में लग रहा है, जो क्षणभर में जगत् में प्रलय मचा सकें। विध्वंसक साधन-सामग्री के आविष्करण और सर्जन की यह प्रक्रिया उत्तरोत्तर तीव्रगति के साथ चल रही है। इन शस्त्रास्त्रों का कहीं प्रयोग हो न जाय, इस भीति से मानव विपुल नर-संहार से बचने हेतु कभी कभी अनाक्रमण-सन्धि की चर्चाएँ करता है, कभी विश्व-मैत्री की बातें करता है पर भीतर ही भीतर सब एक दूसरे के प्रति अविश्वासी तथा शंकाशील हैं। सचमुच आज सर्वत्र एक ऐसा वातावरण छाया है, जिसमें पारस्परिक अविश्वास, संशय तथा दुराव के भाव व्याप्त हैं।

सभी शान्ति की बातें करते हैं, चाह भी रखते हैं पर वैसा सध नहीं पाता। आज के इस विषम युग में, मैं यह समझता हूँ, श्रमण भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित जीवन-दर्शन या जैन धर्म के सिद्धान्तों की वस्तुतः बहुत बड़ी उपयोगिता है।

अहिंसा जैनधर्म का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। अहिंसा की चर्चा तो अन्यान्य धर्मों में भी यथा-प्रसंग होती रही है, पर वैचारिक एवं व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से जैनधर्म इसमें अत्यन्त सूक्ष्मता तथा गहराई तक पहुँचा। उसकी मान्यता है कि न केवल किसी प्राणी के प्राणों का विच्छेद करना हिंसा है, वाणी द्वारा किसी को आघात पहुँचाना भी हिंसा है। किसी के प्रति दुर्विचार लाना भी हिंसा है। यद्यपि जिसके प्रति मन में दुर्विचार लाए जाते हैं, उसको वे दिखाई नहीं देते किन्तु जो दुर्विचार लाता है, उसके मन को तो वे विकृत तथा दूषित कर ही डालते हैं। विकारमय तथा दोषग्रस्त चिन्तनधारा वातावरण में अशांतिमय स्थिति का निष्पादन करती है, ज्ञानीजन ऐसा बतलाते हैं। किसी भी क्रिया (Action) की प्रतिक्रिया (Reaction) होती है, यह सुनिश्चित है। कोई व्यक्ति यदि अपने मन में, वचन में तथा कर्म में अहिंसा स्वीकार करता है तो उससे सम्बद्ध जितने भी व्यक्ति हैं, प्रतिक्रिया-स्वरूप उनमें अहिंसक भाव उत्पन्न होता है। वातावरण सहज ही पवित्र बनता है। यदि एक राष्ट्राध्यक्ष भावात्मक रूप में भी यथार्थतः अहिंसा को स्वीकार करले तो उसमें जरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी सन्देह नहीं कि उसका अन्यान्य राष्ट्राध्यक्षों पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ेगा। अहिंसा से ही विश्वमैत्री तथा समता फलित होती है। विश्वमैत्री भाषणों, वार्तालापों और आयोजनों से कभी फलित नहीं होती। उसे लाने हेतु अहिंसा को जीवन में उतारना ही होगा। भगवान् महावीर ने अहिंसा को विज्ञान बतलाया, जिसका आशय यह था कि अहिंसा को सूक्ष्मता, गहनता तथा व्यापकता के साथ जानना वास्तव में बहुत बड़ी उपलब्धि है। वैयक्तिक, पारिवारिक सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय—सभी क्षेत्रों में अहिंसा की अपरिहार्य आवश्यकता है। जैन धर्म के अनुसार अहिंसा कायरों का सिद्धान्त नहीं है, वह वीरों का धर्म है। अहिंसा को जीवन में उतारने के लिए बहुत बड़ी आत्म-शक्ति की आवश्यकता है।

अहिंसा की तरह जैनधर्म का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त अनेकांत दर्शन है। जीवन में हम प्रत्यक्ष रूप में जो संघर्ष, द्वन्द्व, कलह तथा शत्रुभाव देख रहे हैं, उसका मूल मनुष्य के विचारों में उत्पन्न होता है। विचार वस्तुतत्त्व की समझ पर निर्भर करते हैं। यदि समझ में आग्रह बुद्धि या ऐकान्तिक पकड़ होगी तो व्यक्ति जड़ बनेगा। फलतः वह सत्य के बहुआयामी स्वरूप को यथावत् रूप में पकड़ ही नहीं सकेगा और न उसे प्रतिपादित ही कर सकेगा। अक्सर होता ऐसा ही है, लोग किसी वस्तु या तत्त्व के एक ही पक्ष को दुराग्रह या जड़ता के साथ गृहीत कर लेते हैं और एकमात्र उसे ही यथार्थ मानते हैं। जो वैसा नहीं स्वीकारता या नहीं बोलता, उसे लोग गलत मानने लगते हैं। यहीं से संघर्ष का दौर शुरू होता है, जो आगे चलकर शतशाखी, सहस्रशाखी वटवृक्ष की तरह उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। वास्तव में सत्य अनुभूति का विषय है, वह समग्रता से एक साथ कहा नहीं जा सकता। जब वह वचन का विषय बनता है तो उसे भिन्न-भिन्न रूप में भिन्न-भिन्न वचनों द्वारा निरूपित करना होता है। आपेक्षिक निरूपण एकान्त नहीं होता है, वह अनेकान्त होता है, उस निरूपण की वचन-पद्धति को स्याद्वाद कहते हैं। अनेकान्तवाद या स्याद्वाद विश्व को जैनदर्शन की अद्भुत देन है। आज का युग, जिसमें असहिष्णुता, कटुता, पारस्परिक असद्भाव आदि व्यापक रुप में फैलते जा रहे हैं, जिनका परिणाम संघर्ष, हिंसा, रक्तपात के रूप में प्रकट होता है। यदि विचार में अनेकान्त-तत्त्व को स्वीकार कर लें तो ये सब स्थितियाँ जिन्हें मानवता का अभिशाप कहा जा सकता है, स्वयं समाप्त हो जाएँ। विरोध और झगड़े का मुख्य कारण असहिष्णुता है। असहिष्णुता की आधारभूमि दुराग्रह है। अनेकान्त के आते ही तत्काल असहिष्णुता तथा दुराग्रह का उन्मूलन हो जाता है। इससे वैचारिक सहिष्णुता, सौम्यता तथा सद्व्यवहार का वातावरण बनता है।

लोक-जीवन में जो अशान्ति व्याप्त है, उसका एक कारण परिग्रह है, परिग्रह का अर्थ धन, सम्पत्ति, वैभव, साधन-सामग्री और इन सब में आसक्ति है। मनुष्य की यह कितनी बड़ी दुर्बलता है कि वह बहुत कुछ प्राप्त कर लेने पर भी सन्तोष नहीं कर पाता। जिस प्रकार आकाश का अन्त नहीं होता, उसी प्रकार उसकी इच्छाएँ भी अनन्त हैं। ज्यों ज्यों मनुष्य के पास धन-दौलत आता जाता है, उसकी आकांक्षाएँ और अधिक बढती जाती हैं। वह उनमें लिप्त व मूर्छित होता जाता है। शास्त्रकार ने मूर्छा को परिग्रह कहा है। मूर्छा एक प्रकार की बेहोशी है, मादक-द्रव्य का सेवन कर व्यक्ति अपना होश-हवास खो बैठता है, उसी प्रकार परिग्रहजनित मूर्च्छा या धन, वैभव के नशे में भी मनुष्य की वैसी ही स्थिति होती है। जैनधर्म परिग्रह को पाप का मूल मानता है, क्योंकि ज्यों ही मनुष्य धन-दौलत के लोभ में फँस जाता है, वह पाप-पुण्य,

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म-अधर्म सब भूल जाता है। उसे केवल पैसा ही पैसा दीखता है। वैसी स्थिति में मनुष्य के सद्गुण लुप्त हो जाते हैं, उसमें दुर्गुण अपना अड्डा बना लेते हैं। जैनधर्म में परिग्रह के त्याग पर बड़ा जोर दिया गया है। उस द्वारा स्वीकृत पाँच महान् व्रतों में अपरिग्रह भी है। उसके अनुसार साधक की वह स्थिति अत्यन्त पवित्र होती है, जहाँ वह परिग्रह का सर्वथा परित्याग कर देता है। जीवन में अपरिग्रह का भाव परिव्याप्त हो जाने पर, दूसरे शब्दों में सन्तोष व्याप्त हो जाने पर अद्भुत शान्ति का अनुभव होता है। परिग्रह के लिए ही तो आदमी मारा-मारा फिरता है, नीच-पुरुषों की खुशामद करता है, अपमान, भर्त्सना आदि सब कुछ सहता है। यदि वह परिग्रह-लिप्सा से मुक्त हो जाय तो निश्चय ही उसके जीवन में शान्ति का अथाह समुद्र हिलोरे लेने लगता है।

वास्तव में जैनधर्म के आदर्श विश्वजनीन हैं। जैनधर्म संकीर्ण सांप्रदायिकता के परिवेश से सर्वथा विमुक्त है। वह जीवन का यथार्थ दर्शन है, एक शीलमय आचार-पद्धति है, जो सत्य की पृष्ठभूमि पर अवस्थित है। उसके सिद्धान्त निश्चय ही आज के वैषम्यपूर्ण युग में समता, शान्ति, समन्वय और सह-अस्तित्व की सजीव प्रेरणा देने में समर्थ हैं।

जैनसन्तों, विद्वानों एवं उपासकों को चाहिए कि जैनधर्म के इस विराट् एवं शाश्वत शान्तिप्रद विचार-दर्शन को वे जन-जनव्यापी बनाने का सत्प्रयास करें।

□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org